प्रवचन-४१, गाथा-४१, शनिवार, श्रावण शुक्ला ६, दिनांक १६-०८-१९८०

नियमसार, ४१ वीं गाथा। यहाँ बात तो सामान्य यह है कि आत्मा जो है, वह परमेश्वरस्वरूप ही है। आहाहा! परमात्मस्वरूप ही आत्मा है। ऐसे परमात्मस्वरूप में चार भाव नहीं है। यह दृष्टि का विषय बताने को चार भाव नहीं है, ऐसा कहा है परन्तु चार भाव, चार भाव में नहीं, ऐसा नहीं है। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार भाव हैं, उनकी बात चलती है? तो वह व्यवहारनय का विषय है। है, उसका यहाँ निषेध है। समझ में आया? अन्य कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि बस, एक आत्मा सर्व व्यापक है। आहाहा! कबीर की बात में भी निश्चय की बहुत बातें आती हैं, परन्तु वह एकान्त है। यह तो हम दुकान पर ही 'वाडीलाल मोतीलाल' जैन समाचार था। अहमदाबाद (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष की बात है। हम तो दुकान पर जैन समाचार-पत्र मँगाते थे। उसमें कबीर की पुस्तक भेंट में आयी थी। क्योंकि वे तो स्थानकवासी थे न? इसलिए वे कबीर को मानें, परन्तु वह एकान्त है। उसमें ऐसा आया है... १९६५-६६ के वर्ष में वह दुकान पर पढ़ा था। 'पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ बड़ा पहाड़।' आहाहा! एकान्त है। भगवान की प्रतिमा की पूजा है, वह धर्म नहीं परन्तु शुभभाव होता है और वह प्रतिमा अनादि से है। समझ में आया? अनादि से तीर्थंकर की प्रतिमा शाश्वत् असंख्य मन्दिर, नन्दीश्वर द्वीप में मन्दिर-बावन जिनालय आदि, असंख्य व्यंतर के भवन में मन्दिर हैं, भवनपति के (भवन में) जैन मन्दिर हैं। आहाहा! परन्तु वह शुभभाव का निमित्त है। वह शुभभाव उससे होता है, ऐसा नहीं है। निमित्त का निषेध करना, वह निमित्त से नहीं होता, इस अपेक्षा से है, परन्तु निमित्त चीज़ ही नहीं है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! निमित्त चीज़ ही नहीं और शुभभाव होता है, वह निमित्त से-पर से, भगवान के दर्शन से होता है, ऐसा भी नहीं है और शुभभाव हुआ तो वह धर्म का कारण है और धर्म है, ऐसा भी नहीं। अरे! ऐसी बात!

यहाँ कहते हैं कि ये चार भाव नहीं हैं। अपने यहाँ मनुष्यगति तक आया है कि आत्मा में मनुष्यगति ही नहीं है परन्तु गति, गति में नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय में मनुष्यगति है। व्यवहारनय का विषय है। नय है न? तो नय का विषय है। नय है, वह विषयी है। नय है, वह विषयी है, तो उसका विषय है। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं

कि मनुष्यगति से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यह मिथ्या है और मनुष्यगति न मिले तो मोक्ष नहीं मिलता, यह भी मिथ्या है। जब केवलज्ञान की प्राप्ति की दशा अपने में होती है, तब मनुष्यगति हो, व्रजनाराचसंहनन भी हो। अनन्त.. अनन्त.. अमृत के सागर से भरा प्रभु है। सुख है, सुख। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का अनन्त गुण में रूप है। आहाहा! ऐसा अन्दर भगवान विराजता है।

परमात्मा शक्तिरूप से, स्वभावरूप से तो मुक्त ही है। यह तो पर्याय में मुक्त किस प्रकार होता है, उसके उपाय की यह बात चलती है। समझ में आया? तो कहते हैं कि मनुष्यगति, गति में है। यह शरीर नहीं, हों! यह मनुष्यगति नहीं। यह तो शरीर जड़, मिट्टी, धूल है, यह तो पुद्गल है। अन्दर में नामकर्म के उदय से, इस गति में रुकना, उस पर्याय को मनुष्यगति कहते हैं। यह शरीर मनुष्यगति नहीं है, यह तो मिट्टी-धूल है। गति कहाँ है? मनुष्यगति तो जीव की विकारी पर्याय है। यह शरीर है, वह तो जड़-मिट्टी की पर्याय है। यह मनुष्यभव यह और इसे मनुष्यगति कहना, ऐसा है नहीं। आहाहा! कहते हैं कि मनुष्यगति की अन्दर योग्यता है, वह भी आत्मा में नहीं है।

देवगति है। देवगति है और देवगति शुभभाव से मिलती है परन्तु वह शुभभाव और देवगति, वह भी आत्मा के स्वभाव में नहीं है। आहाहा! वीतराग की ऐसी बात! अनेकान्त। देवगति है। पंचम काल के सच्चे सन्त वे भी कहीं केवलज्ञान नहीं पाते, वे स्वर्ग में ही जाते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य जैसे सन्त भी स्वर्ग में हैं क्योंकि केवलज्ञान की प्राप्ति का अभाव है। तो वहाँ भाव तो था—स्वर्ग की गति मिले ऐसा शुभभाव तो था परन्तु वह शुभभाव और गति, आत्मा के द्रव्यस्वभाव में नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

यह मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अध्याय में लिखा है कि व्यवहारनय, नहीं है— ऐसी बात करता है, परन्तु व्यवहारनय का विषय बिल्कुल नहीं, तो उसका ज्ञान करना, वह रहा नहीं। देवगति है। सर्वार्थसिद्धि में स्वर्ग में (जाता है)। आहाहा! पाँच पाण्डव शत्रुंजय में ध्यान में थे। उसमें दुर्योधन के भानेज ने आकर लोहे के गहने बनाये। लोहे के तमतमाते (गहने बनाये) गले में, सिर में (पहनाये)। पहले पंच महाव्रत को विकल्प था परन्तु जब यह उपसर्ग आया तो अन्तर में उतर गये। आहाहा! अन्तर में आनन्दकन्द प्रभु, अमृत का सागर, सरोवर, सागर है, ऐसे परमेश्वर में दृष्टि तो थी, (अब) स्थिरता जम गयी। स्थिरता जमकर तीन को केवलज्ञान हुआ। धर्मराजा, भीम और अर्जुन। तथा सहदेव और नकुल

दोनों साथ में थे परन्तु ऐसा एक विकल्प आया कि अरे! भाई को कैसे होगा? बड़े भाई को कैसे होगा? इतना विकल्प आया तो... विकल्प है सही। उससे सर्वार्थसिद्धि की गति का बन्ध पड़ गया। समझ में आया? परन्तु वह विकल्प और गति, द्रव्यस्वभाव में नहीं है। आहाहा!

द्रव्यवस्तु जो परमात्मस्वरूप... आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय, सम्यग्दर्शन जिसे ध्येय बनाकर सम्यग्दर्शन होता है, वह ध्येय चीज़ तो पूर्णानन्द का नाथ, जिसमें पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! तो देवगति और देवगति के कारणरूप भाव, दोनों का द्रव्यस्वभाव में अभाव है, परन्तु पर्याय में है। उसका निषेध नहीं करना कि नहीं (पर्याय में भी नहीं है, ऐसा नहीं मानना); जाननेयोग्य है। व्यवहारनय का विषय है ही नहीं, ऐसा नहीं जानना; वरना एकान्त मिथ्यात्व होगा। आहाहा! यह चार गति।

आत्मा वस्तु परमेश्वरस्वरूप... आहाहा! पूर्ण वीतराग शक्ति से मुक्तस्वरूप ही आत्मा है। ऐसे स्वरूप में यह चार गति नहीं है और क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय नहीं है। कषाय की पर्याय में कषाय है। न हो तो समकिती वीतराग हो जाये और केवलज्ञानी हो जाये। सम्यग्दृष्टि को भी कषाय तो आती है। आहाहा! भगवान की पूजा का, दया का, दान का भाव आता है। आहाहा! परन्तु वह भाव... आहाहा! कषाय है। वह कषायभाव, त्रिकाली भगवान आत्मा में नहीं है।

परमात्मा अपने स्वरूप में दृष्टि करने से परमेश्वर की प्राप्ति होती है। आहाहा! सम्यग्दर्शन में परमेश्वर-आत्मा की प्राप्ति होती है। अरे! प्रभु! आहाहा! जिसके गुण का पार नहीं, जिसके आनन्द का पार नहीं, वह जो अतीन्द्रिय आनन्द है, वह भी अस्तित्व का आनन्द, वस्तुत्व का आनन्द, ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द—ऐसी अनन्त शक्तियों के आनन्द से भरपूर प्रभु आत्मा है। आहाहा! उस चीज़ में चार कषाय नहीं है। कषाय की पर्याय में कषाय है। वह जाननेयोग्य है। वीतराग होने के बाद कषाय नहीं होती, परन्तु नीचे समकिती को ज्ञानी को, अरे! क्षायिक समकिती हो। श्रेणिक राजा को ऐसा राग हुआ, सिर फूटकर देह छूट गयी परन्तु वह राग चारित्रदोष है। अन्तर में वह मुझमें है, ऐसा वे नहीं मानते थे। आहाहा! हेयबुद्धि से आता है। ऐसे दया, दान, भक्ति के परिणाम हेयबुद्धि से आते हैं। परन्तु वह चीज़ अन्दर वस्तु में नहीं है।

द्रव्यस्वभाव जो चिदानन्द परमात्मा... आहाहा! वह बात यहाँ चलती है। वह

उदयभाव कषाय आत्मा में नहीं है। यह स्त्रीलिंग, पुल्लिंग और नपुंसकलिंग। शरीर के लिंग नहीं, हों! अन्तर के भाव-लिंग की बात है। शरीर जो यह पुरुष का है, स्त्री का है, वह तो जड़ की पर्याय है। यह तो अन्दर स्त्रीलिंग की वासना का विकल्प, स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग, नपुंसकलिंग वह पर्याय में है अवश्य। नारकी जीव, श्रेणिक राजा अभी नरक में हैं। चौरासी हजार वर्ष (की स्थिति है) क्षायिक समकित है, परन्तु हैं नपुंसक। आहाहा! सब नारकी नपुंसक है। स्त्री-पुरुषवेद वहाँ नहीं है। आहाहा!

असंयमी के प्रकार बहुत हैं, इन्द्रिय का असंयम, मन का असंयम, राग का असंयम, कषाय का असंयम- ये सब असंयम सामान्यरूप से एक हैं। अन्तर्भेदरूप से बहुत हैं ये सब। आत्मद्रव्य है भगवान आत्मा, उसमें तो इनका स्पर्श नहीं। आहाहा! अपने आनन्दस्वरूप का जहाँ स्पर्श करता है। सम्यग्दृष्टि अपना स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु का स्पर्श करता है। नियमसार में एक कलश में पाठ है। स्पर्श, स्वरूप का स्पर्श। स्पर्श का अर्थ स्वरूप का अनुभव। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्दमूल.. आहाहा! कन्द का मूलस्वरूप है, वह कन्दमूल अर्थात् वैसा नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द, ऐसा मूल वह है। उसका स्पर्श करना, उसका स्पर्श-वेदन (करना), सम्यग्दर्शन से स्पर्श करना, वह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी जिसे स्पर्श करे, उस चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात कहाँ है ? कबीर और कितने ही अन्यमतियों ने निश्चय की बहुत बातें की हैं। वे दुकान पर पढ़ी थी। वह वस्तु नहीं। आज भाई लाये थे। हसमुख का लड़का राजू है न ? वह टुकड़ा लाया था 'कहत कबीरा सुनो मेरे साधु...' ऐसा लिखा था परन्तु वह पुस्तक तो हमने (संवत्) १९६५-६६ के वर्ष में दुकान पर पढ़ी थी। पूरी पढ़ी थी। कबीर की बहुत बड़ी पुस्तक है। वह नहीं। वह मार्ग नहीं। आहाहा!

यहाँ तो पर्याय में वेद है, कषाय है। है, तथापि द्रव्यस्वभाव में नहीं। आहाहा! समझ में आया ? अकेला आत्मा पवित्र ही है और पर्याय में अपवित्रता है ही नहीं—ऐसा नहीं है। संसार है—शुभ-अशुभपरिणाम वह संसार अपवित्रता है। वह पर्याय में अपवित्रता है, परन्तु त्रिकाली द्रव्यस्वभाव में उसका प्रवेश नहीं। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय / ध्येय है। सम्यग्दर्शन द्रव्य को स्वीकार करता है। आहाहा! सबेरे अन्त में आयेगा। आता है न सबेरे ? उसमें आगे आयेगा। सकल निरावरण। प्रभु तो अन्दर सकल निरावरण है।

द्रव्य सत्व भगवान परमात्मा पवित्र का पिण्ड प्रभु, उसे कोई आवरण है ही नहीं। वह एक समय की पर्याय में राग और कर्म के निमित्त का आवरण ज्ञात होता है; वस्तु में नहीं है। आहाहा! सकल निरावरण। यहाँ तो कहते हैं आठ कर्म से आत्मा रुका है। वह तो पर्याय की बात है, प्रभु! वस्तु है, वह तो त्रिकाली आनन्द का नाथ तत्त्वस्वरूप, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिकपरमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वह मैं; पर्यायमात्र मैं नहीं। आहाहा! यह तो दृष्टि की अपेक्षा से बात है। दृष्टि के ध्येय की अपेक्षा से बात है परन्तु पर्याय में है ही नहीं, (ऐसा माने)... नहीं है तो निषेध किसका? गधे के सींग नहीं होते तो निषेध किसका? आकाश के फूल नहीं तो निषेध किसका? समझ में आया? वैसे पर्याय में यह बात है ही नहीं तो निषेध किसका? पन्नालालजी! बहुत सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, इस सूक्ष्म का अर्थ अपूर्व है। सूक्ष्म की व्याख्या (यह है कि) अपूर्व है। अपूर्व कहने पर इसके ध्यान में बराबर बहुत लक्ष्य हो तो यह बात समझ में आती है। आहाहा! अनन्त बार ग्यारह अंग पढ़ा, वह भी परज्ञेयनिष्ठ है। आहाहा! स्वज्ञेय परमात्मा में तो केवलज्ञान की पर्याय का अभाव है तो फिर शास्त्रज्ञान का तो उसमें अभाव है ही। आहाहा! कहो, ज्ञानचन्दजी!

असिद्धत्व एक;... असिद्धत्व। चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धत्व है। आहाहा! चौदहवाँ गुणस्थान पाँच अक्षर रहे, वहाँ तुरन्त मुक्ति होती है, परन्तु जब तक चौदहवाँ गुणस्थान पाँच अक्षर हैं*, तब तक असिद्ध है। आहाहा! वह सिद्ध नहीं। केवलज्ञानी परमात्मा को तेरहवें गुणस्थान में कम्पन है। वह कम्पन छूटकर चौदहवें गुणस्थान में अकम्पन हुआ परन्तु अभी चार गुण जो हैं, उनकी विपरीत पर्याय वहाँ चौदहवें में है। आहाहा! अघाति की चार पर्याय है, उनकी विपरीतता वहाँ चौदहवें में है। इस अपेक्षा से वहाँ असिद्धत्व है। आहाहा!

मिथ्यादृष्टि असिद्ध है। पर्याय में, हों! समकिती भी असिद्ध है। तेरहवें गुणस्थान में केवली भी असिद्ध है। अरे! जो कम्पन छूटकर चौदहवें गुणस्थान में गये तो भी असिद्ध है। यह तो समय-समय का विवेक-विचार है। वह असिद्धत्व है, परन्तु वह द्रव्य में नहीं। पर्याय में तो चौदहवें गुणस्थान तक है। आहाहा! डाह्यभाई! आहाहा! वे केवली किसी का

विनय करे, यह वस्तु में नहीं है। कम्पन है। किसी का विनय करे, यह तो विकल्प है। वह तो केवली को होता ही नहीं। सर्वज्ञ में असिद्धत्व है परन्तु वे किसी का विनय करे—ऐसा असिद्धत्व उनमें नहीं है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा केवली, गुरु का विनय करे, यह है ही नहीं। आहाहा!

यहाँ असिद्धत्व। पहले गुणस्थान से चौदहवें (गुणस्थान) तक असिद्धत्व है। आहाहा! तथापि वह असिद्धत्व की पर्याय, सिद्धत्व की पर्याय हुई नहीं तो वह असिद्धत्व स्वरूप में नहीं। वास्तव में तो सिद्ध की पर्याय है, वह पर्याय भी द्रव्य में नहीं। गजब बात है। यहाँ तो उदयभाव की व्याख्या करनी है, इसलिए सिद्ध नहीं लिया। वह सिद्ध क्षायिकभाव में गया। आहाहा! केवलज्ञान की, सिद्ध की पर्याय क्षायिकभाव भी द्रव्य / वस्तु में नहीं है, वह तो एक समय की पर्याय है। उत्पन्न हो, वह पर्याय है। द्रव्य-गुण कहीं उत्पन्न नहीं होते। द्रव्य-गुण तो शाश्वत् अन्दर परमात्मस्वरूप विराजमान है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सिद्धान्त हैं। बहुत कठिन।

असिद्धत्व एक;... एक लिया है। है तो असिद्धत्व का प्रकार। क्योंकि चार अघाति के कारण से चार विपरीतता है। उन चारों की विपरीतता है, परन्तु असिद्धत्वरूप से, एक और भेदरूप से चार। आहाहा! इस भगवन आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु में असिद्धत्व का अभाव है। आहाहा! अरे! जड़, शरीर, वाणी, मन का तो अभाव; दया, दान के विकल्प का भी अभाव है। असिद्धत्व जो चौदहवें (गुणस्थान) में है, उसका भी द्रव्य में अभाव है, परन्तु द्रव्य में अभाव है तो पर्याय में असिद्धत्व नहीं है-ऐसा नहीं है। आहाहा! कठिन काम है।

शुक्ललेश्या,... पहली कृष्ण, नील, कापोत (लेश्या) नहीं ली। क्योंकि मुनि टीका करनेवाले हैं न, तो मुनि शुक्ल आदि लेश्या। वरना तो पहले कृष्ण, नील, कापोत, तेज—ऐसा लेना चाहिए। आहाहा! गजब बात है। कहते हैं कि हमारे में शुक्ललेश्या होती है। मुनि हैं। वे शुक्ललेश्या से हम कहते हैं कि शुक्ल, पद्म और तेज, यह शुभभाव है, यह हमारी चीज़ में नहीं है। पर्याय में है। शुक्ललेश्या है तो शुक्ललेश्या आत्मज्ञानसहित मुनिपना हो तो शुक्ललेश्या में देह छूटे तो वे छठवें देवलोक में जाते हैं। छठे से नौवें ग्रैवेयक तक जाते हैं। शुक्ललेश्या के इतने प्रकार हैं। पाँचवाँ ब्रह्मलोक देव, छठा वान्तक.. मरते हुए शुक्ललेश्या हो वे मरकर छठवें से नौवें ग्रैवेयक में जाते हैं। मिथ्यादृष्टि, हों! और

सम्यग्दृष्टि की शुक्ललेश्या हो तो वे छठे से सर्वार्थसिद्धि तक जाते हैं, क्योंकि सर्वार्थ में वह शुक्ललेश्या है। विजय, जयन्त, वैजयन्त, अपराजित आदि हैं न? शुक्ललेश्यावाले वहाँ जाते हैं। आहाहा! वे दो सर्वार्थसिद्धि में गये, दो पाण्डव। नकुल और सहदेव। शत्रुंजय पर देह छूट गयी, परन्तु वहाँ विकल्प रह गया। वहाँ मुनियों को लोहे के तमतमाते (गहने) पहनाये। स्वयं को भी पहनाये परन्तु वे बड़े हैं, एक माता के पुत्र हैं और वापिस हम साधर्मी मुनि हैं। एक जरा विकल्प आया, वहाँ आयुष्य बँध गया। सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य बँध गया। परन्तु कहते हैं कि वह शुक्ललेश्या और सर्वार्थसिद्धि का बन्धन—भावबन्ध, द्रव्य में नहीं है। आहाहा! सम्यग्दृष्टि की तो द्रव्य पर दृष्टि है। पर्याय का ज्ञान करता है परन्तु दृष्टि का विषय पर्याय नहीं है। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग!

यह **शुक्ललेश्या, पद्मलेश्या,...** ये हैं हलकी। तेजोलेश्या **पीतलेश्या,...** तेजो कहो या पीत कहो, यह हल्की। **कापोतलेश्या,...** यह अशुद्ध है। **नीललेश्या और कृष्णलेश्या,...** बाद में तीन लीं। पहले शुभ ली और बाद में अशुभ ली। क्योंकि मुनिराज को तो तेजो, पद्म, शुक्ललेश्या तो होती है, वर्तती है। सच्चे सन्त की बात है, हों! सम्यग्दर्शनसहित प्रभु का दर्शन हुआ है। अन्दर परमात्मस्वरूप का साक्षात्कार हुआ है और तदुपरान्त स्वरूप में अतीन्द्रिय स्वाद लेने में लीनता हुई है। प्रचुर आनन्द का वेदन है, उन्हें भी तेजो आदि लेश्या के परिणाम होते हैं। नीचे की तीन लेश्या उन्हें नहीं होती। मुनियों को कृष्ण, नील, कापोत लेश्या नहीं होती। उन्हें तेजो, पद्म और शुक्ललेश्या होती है। तेजो अर्थात् पीत। तो कहते हैं कि पीतलेश्या है, वह मेरे द्रव्य में नहीं। पर्याय में है, ऐसा जानते हैं। आहाहा!

...कापोतलेश्या, नीललेश्या और कृष्णलेश्या, ऐसे भेदों के कारण लेश्या छह। यह उदयभाव का वर्णन किया। वह उदयभाव जीवद्रव्य में नहीं है। परमपारिणामिक प्रभु; पारिणामिक अर्थात् सहजरूप वस्तु, जिसमें कर्म के निमित्त और निमित्त के अभाव की कोई अपेक्षा नहीं, ऐसा सहजात्मस्वरूप प्रभु, ऐसे पंचम भाव में यह उदयभाव, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव नहीं है। अरे रे! ऐसी बात! यहाँ तो अभी शरीर मैं नहीं, यह स्त्री मेरी नहीं, यह करना मुश्किल पड़ जाता है। अर..र..! उस स्त्री के विषय की रमणता में राग में एकाकार हो जाये कि उसमें से मुझे आनन्द आया, बहुत आनन्द हुआ। अरे! प्रभु! क्या कहता है तू? भाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि लिंग जो पुरुषवेद है। भाव लिंग, हों! यहाँ जड़ की बात नहीं

है। वह तुझमें नहीं है तो उससे तुझे आनन्द किसप्रकार आयेगा ? वेद का विकल्प उठे, वह तो दु:ख है। आहाहा! परमात्मा आनन्दमूर्ति प्रभु में दु:ख का अत्यन्त अभाव है। आहाहा! जगत से निराला अपना आत्मा मानना, वह अलौकिक बात है। आहाहा!

अब **पारिणामिकभाव के तीन भेद इस प्रकार हैं...** अब वापस पारिणामिकभाव के तीन भेद। **जीवत्वपारिणामिक,...** जीवत्वपारिणामिकभाव सहज त्रिकाली है। **भव्यत्वपारिणामिक और अभव्यत्वपारिणामिक।** भव्य जीव—अल्प काल में उसकी मुक्ति होती है। किसी को नहीं होती परन्तु मुक्ति के योग्य है, उसे भव्यत्व कहते हैं। भव्य जीव भी निगोद में अनन्त पड़े हैं, जो कभी भी त्रसपना भी प्राप्त नहीं करनेवाले हैं। आहाहा! निगोद में ऐसे अनन्त भव्य जीव पड़े हैं कि अभी निगोद में से कभी लट हुए नहीं और होंगे भी नहीं। आहाहा! परन्तु उन्हें भव्यत्व कहने में आता है। मोक्ष के योग्य, ऐसा कहने में आता है। योग्यता प्रगट करे नहीं, वह दूसरी बात है। आहाहा! परन्तु वह भव्यत्वपना भी जीवद्रव्य में नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? अभव्यत्व उसमें नहीं है।

यह जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;... यह क्या कहते हैं ? भव्य जीव और अभव्य, दोनों में जीवत्वशक्ति समान है। वह परम-पारिणामिकभाव से दोनों में समान शक्ति है। अभव्य की पारिणामिकभावशक्ति कम है और भव्य की पारिणामिकशक्ति विशेष है, ऐसा कोई अन्तर नहीं है। समझ में आया ? आहाहा!

यह प्रश्न एक बार (संवत्) १९८५ के वर्ष में सम्प्रदाय में बहुत हुआ था। एक मोहनलालजी थे, उन्होंने पुस्तक बनायी थी। मोहनलालजी! उसमें उन्होंने ऐसा लिखा था, भव्य जीव को समकिती है, उसे भी तीन भाव होते हैं मिथ्यात्व, मिश्र और समकित (मोहनीय)। परन्तु अनादि का अभव्य है, उसे दो ही भाव हैं। मिथ्यात्व और मिश्र। समकित मोहनीय नहीं होता। अभव्य को अकेला मिथ्यात्व है। मोहनमाला (नाम की) पुस्तक बनायी थी। १९८० की बात है। हमें भेजी थी। उनकी दीक्षा को तो बहुत वर्ष हुए। (हमने) कहा, तुम्हारी यह बात मिथ्या है।

अभव्य और भव्य दोनों को मिथ्यात्व का एक ही प्रकार है। मिश्र और समकितमोहनीय तो सम्यग्दर्शन होने के बाद होता है। भव्य जीव मोक्ष जाने के योग्य है, इसलिए उसे समकितमोहनीय है, मिश्र है, ऐसा तुमने लिखा है, यह बात मिथ्या है, कहा। मोहनलालजी! ५०-५० वर्ष की दीक्षा। तब मेरी दीक्षा छोटी (थोड़े समय की) परन्तु मेरे सामने बोल नहीं

सकते थे। दवाब हो जाये न सबको, कि इनका मानेंगे, तुम्हारा नहीं मानेंगे। कानजीस्वामी की ऐसी प्रतिष्ठा है। थोड़ा-थोड़ा बोलने लगे। मणिलालजी थे। महाराज! सुनो। कानजी मुनि कहते हैं वह सुनो। सामने इनकार मत करो। यह तो १९८५ की बात है। पन्द्रह वर्ष की दीक्षा।

बापू! आत्मा में अनादि से अभव्य जीव को पच्चीस प्रकृति और छब्बीस प्रकृति है। मोहनीय की छब्बीस प्रकृति है, तब उन्होंने लिखा कि सत्ताईस है। क्योंकि भव्य है इसलिए। और अभव्य (मोक्ष) नहीं पायेगा, इसलिए अकेला मिथ्यात्व है। समझ में आया? ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से मिथ्यात्व एक ही है। भव्य हो या अभव्य हो। आत्मज्ञान होने के बाद मिथ्यात्व के तीन टुकड़े होते हैं—मिथ्यात्व, मिश्र और समकित -मोहनीय। जरा सूक्ष्म बात है, भाई! हमारे तो बहुतों के साथ चर्चा होती है न! यहाँ तो हम सत्य के अभिलाषी हैं। हम ऐसी कोई कल्पना से तुम कहो, वह बात हम नहीं मानेंगे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;...** जीवत्वशक्ति दोनों को समान है। यह क्या कहा? भव्य या अभव्य। 'सिद्धसमान सदा पद मेरौ' दोनों सिद्धसमान हैं। अभव्य भी अन्दर सिद्धसमान है। आहाहा! वह तो पर्याय में उल्टा पुरुषार्थ है, बाकी स्वभाव तो अभव्य का भी (सिद्धसमान ही है)। एक प्रश्न बहुत चला था कि अभव्य को मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय और अवधिज्ञानावरणीय तीन प्रकृति है, पाँच प्रकृति नहीं। तो मिश्रमोहनीय का प्रश्न उठा। (संवत्) १९८५ के वर्ष की बात है। अभव्य को तीन आवरण हैं, मति आवरण, श्रुत आवरण, अवधि आवरण। मन:पर्यय और केवल (ज्ञान-आवरण) दो आवरण नहीं हैं—ऐसा उन्होंने मोहनमाला पुस्तक में लिखा। मैंने कहा, मिथ्या बात है। अभव्य को भी केवलज्ञानावरणीय है। उसे केवल (ज्ञान) प्रगट नहीं होता, इसलिए केवलज्ञानावरणीय नहीं है, (ऐसा नहीं है)। यह यहाँ कहते हैं कि अभव्य और भव्य दोनों को जीवत्वशक्ति पारिणामिकभाव से पूर्ण है। समझ में आया? उसमें तो आवरण है ही नहीं। आहाहा! और आवरण है तो पर्याय में पाँच आवरण है। अभव्य को तीन आवरण और भव्य को पाँच आवरण, (ऐसा नहीं है)। क्योंकि अभव्य

मोक्ष नहीं जाते, इसलिए तीन आवरण है; भव्य मोक्ष जाता है तो पाँच आवरण है, तो पाँच को टालकर जाता है, (ऐसा नहीं है)।

यह यहाँ कहते हैं। **जीवत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;...** है ? भव्य और अभव्य को जीवत्वपारिणामिकस्वभावभाव है–वह समान है। भव्य को आवरण कम है और अभव्य को विशेष आवरण है, यह तो पर्याय की अपेक्षा से है; वस्तु में नहीं। भव्य और अभव्य दोनों समान हैं। आहाहा! यह अभव्य का जीव भी परमपारिणामिकभाव से पूर्ण आनन्द का कन्द है। यह जीवत्वशक्ति अर्थात् पूर्ण त्रिकाली भाव लिया। त्रिकाली भाव पूर्ण परमात्मा है। वह तो प्रगट नहीं होता। वह तो पुरुषार्थ की उल्टी दशा है। समझ में आया ? आहाहा! यह कहते हैं कि **भव्यों को तथा अभव्यों को समान होता है;....**

भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;... भव्य जीव में अभव्यत्व पारिणामिक होता है और वह भव्यत्वपारिणामिक सिद्ध में नहीं है। क्या कहा ? भव्यजीव सिद्धपद को प्राप्त करता है। वह भव्य। सिद्धपद प्राप्त हुआ वहाँ भव्यपना नहीं रहा। जरा सूक्ष्म बात है। वैसे पारिणामिकभाव कहा तो कोई कहे कायम रहे, ऐसी बात नहीं। सिद्ध हुए तो भव्यत्वपारिणामिकभाव नहीं रहता। सिद्ध में भव्य-अभव्य नहीं है। आहाहा! हमारे तो लोगों के साथ बहुत चर्चा चलती थी।

यहाँ तो कहते हैं कि **भव्यत्वपारिणामिकभाव, भव्यों को ही होता है;...** जब तक सिद्ध नहीं, तब तक (होता है)। जब वह भव्य जीव आत्मा का अनुभव करके मुक्ति को प्राप्त करता है तो सिद्ध में भव्य-अभव्य तो नहीं परन्तु भव्यपना नहीं। भव्यता का अर्थ योग्यता और लायकात है। तो लायकात पूर्ण हो गयी। आहाहा! अब ऐसी बातें। यह समझे बिना ऐसा का ऐसा क्रियाकाण्ड करे—दया पालो, व्रत करो, अपवास करो। कर्ताबुद्धि है, मिथ्यात्व है; तथापि वह द्रव्यस्वभाव में नहीं, पर्याय में है। आहाहा! **अभव्यत्व-पारिणामिकभाव, अभव्यों को ही होता है। इस प्रकार पाँच भावों का कथन किया।**

अब क्षायिकभाव जो कहा, वह आत्मा में भले है नहीं, परन्तु है किसे ? क्षायिकभाव है, परन्तु आत्मा में नहीं। परन्तु क्षायिकभाव की पर्याय किसे होती है ? **पाँच भावों में क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप है।** क्या कहते हैं ? **पाँच भावों में क्षायिकभाव, कार्यसमयसारस्वरूप है।** भगवान आत्मा त्रिकाली कारणसमयसार है। वस्तु है, वह तो

कारणसमयसार है, वह पारिणामिकभाव से है, परन्तु क्षायिकभाव का केवलज्ञान हुआ, वह पारिणामिकभाव, वह कार्यसमयसार। उसे पारिणामिक कहते हैं, परमपारिणामिक नहीं। परमपारिणामिक तो द्रव्य है। जयधवल में पर्याय को पारिणामिक कहा है।

यहाँ कहते हैं कि **कार्यसमयसारस्वरूप है। वह (क्षायिकभाव) त्रिलोक में प्रक्षोभ के हेतु...** आहाहा! किसे होता है, ऐसा कहते हैं। ***खलबली। तीर्थंकर के जन्मकल्याणकादि प्रसंगों पर तीन लोक में आनन्दमय खलबली होती है।*** आहाहा! उसे क्षायिकभाव है, ऐसा कहते हैं। है? **प्रक्षोभ के हेतुभूत तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले...** यहाँ तो तीर्थंकर लिये हैं। केवली सामान्य नहीं लिये। **तीर्थंकरत्व द्वारा प्राप्त होनेवाले सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त...** भगवान आत्मा सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त पर्याय है। जैसा सकल-विमल द्रव्यस्वभाव है, वैसा पर्याय में सकल-विमल ज्ञानस्वभाव प्रगट हो गया। आहाहा!

सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को... तीर्थंकरनाथ। नाम मुख्यरूप से दिये। **(तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को)...** ऐसे तो तीर्थंकर नाम दिया है। पढ़ते थे, तब विकल्प आया था कि कदाचित् ये पद्मप्रभमलधारिदेव भविष्य में तीर्थंकर होंगे या नहीं? यह लिखा है। यह तो पहले पढ़ा था, तब ख्याल आया था। यह तीर्थंकर प्रकृति अकेली क्षायिक में क्यों डाली? गौणरूप से केवलज्ञान लिया, मुख्यरूप से यह लिया। ये पद्मप्रभमलधारिदेव स्वर्ग में गये हैं। वहाँ से (निकलकर) कदाचित् तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाले होंगे। आहाहा! ऐसा अन्दर से आया था। समझ में आया? परन्तु फिर हमारा भी ऐसा ही है। यहाँ भी तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाले हैं। सामान्य केवली नहीं। प्रभु! बात कुछ सूक्ष्म है, प्रभु! यह तो अन्तर की बात है। समझ में आया? पद्मप्रभमलधारिदेव के लिये ऐसा आ गया। यह बात है। आहाहा!

कहते हैं कि **सकल-विमल केवलज्ञान से युक्त तीर्थनाथ को (तथा उपलक्षण से सामान्य केवली को) अथवा सिद्धभगवान को होता है।** केवलज्ञान तीर्थनाथ को होता है, सामान्य केवली को होता है और सिद्ध को होता है। **औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं;...** उदय, उपशम, क्षयोपशम। क्षायिक है, वह तीर्थंकर को, केवली को और सिद्ध को होता है। और यह अस्ति वापस सिद्ध करनी है। निषेध किया, परन्तु है किसे? आहाहा! यह औदयिक नाम यह भेद लिये न? उदय

के भेद लिये न ? उदयभाव के इक्कीस भेद पढ़ गये न ? और क्षयोपशम के अठारह भेद, उपशम के दो भेद। आहाहा! ये **औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिकभाव, संसारियों को ही होते हैं;...** आहाहा! क्षयोपशम समकित हो, उपशम समकित हो, तो भी संसार है। असिद्ध है न ? पर्याय में असिद्ध है न ? आहाहा!

अब जरा सूक्ष्म बात आती है। **पूर्वोक्त चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! चार भाव आवरण संयुक्त। इसका अर्थ कि आवरण का निमित्त था और उसका अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा से, **चार भाव आवरणसंयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! यह क्षायिकभाव भी आवरणसंयुक्त है। आवरणसंयुक्त का अर्थ ? आवरण था, उसका अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा रही। आहाहा! आवरणसंयुक्तपना कहा। भगवान को तो चार घाति का आवरण है नहीं। आहाहा! सिद्ध को भी है नहीं।

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आवरण पहले था, उसका अभाव हुआ, यह पर्याय की अपेक्षा से बात है। द्रव्य में तो कोई आवरण ही नहीं। वह तो त्रिकाली निरावरण है। इस अपेक्षा से लिया है। वस्तु त्रिकाली निरावरण है, तो क्षायिकभाव, आवरणवाले का अभाव हुआ, इतनी अपेक्षा से आवरणवाला कहने में आया है। ऐसी बात है। वीतरागमार्ग बहुत गम्भीर, भाई! आहाहा!

वह **मुक्ति का कारण नहीं हैं।** आहाहा! **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** आहाहा! भगवान आत्मा क्षायिकभाव से रहित त्रिकालीनिरुपाधि... आहाहा! **जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** निरंजन—मैल नहीं, आवरण नहीं। आवरण के अभाव की अपेक्षा नहीं। **निज परम पंचम भाव (पारिणामिकभाव की) भावना से...** इस पारिणामिकभाव की भावना से। इस भावना में क्षायिकभाव आदि आये, परन्तु क्षायिकभाव की भावना से-ऐसा नहीं। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ, जिन्होंने एक समय में एक पर्याय में-ज्ञान में तीन काल-तीन लोक (ज्ञात होते हैं), भाई! यह मार्ग कोई अलौकिक है। इसे समझना और फिर द्रव्य / आत्मा का अनुभव (होना), वह अलौकिक बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि क्षायिकभाव है, वह भी है तो मुक्ति। केवली हैं तो भावमुक्ति है।

फिर चार कर्म का अभाव होगा, तो द्रव्यमुक्ति होगी, तथापि कहते हैं, यह तो पर्याय की बात है। उस पर्याय के आश्रय से मुक्ति नहीं होती, इससे मुक्ति का कारण नहीं है। **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** त्रिकाल निरुपाधि भगवान, जिसमें पर्याय का भी अभाव है। क्षायिकभाव में जो आवरण का अभाव होकर क्षायिक पर्याय हुई, इस अपेक्षा से आवरणवाला कहकर त्रिकाली वस्तु निरावरण भगवान अन्दर है, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय वहाँ है, (ऐसा कहा)। आहाहा! ऐसा मार्ग!

त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव... समझ में आया? **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है...** उपाधि है या नहीं है, इसकी अपेक्षा नहीं। **त्रिकालनिरुपाधि जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन निज परम पंचम भाव...** वापस शब्द क्या लिये हैं? **निरंजन निज परम पंचम भाव...** भगवान को पंचम भाव है तो भले हो। यह निज परम पंचम भाव। **निज परम पंचम भाव...** परम क्यों कहा? (इसलिए कहा) कि उदय, क्षायिक को जयधवल में पारिणामिकभाव कहा है, तो त्रिकाली पारिणामिकभाव की पर्याय है न? क्या कहा? जयधवल ग्रन्थ शास्त्र है, उसमें चार भाव को पारिणामिक कहा है और त्रिकाली को परमपारिणामिक कहा है। राग को पारिणामिक कहा, मिथ्यात्व को पारिणामिक कहा। उस त्रिकाली पारिणामिकभाव की पर्याय गिनकर पारिणामिकभाव कहा। यहाँ तो वह नहीं। यहाँ तो परमपारिणामिकभाव। है? आहाहा! उसकी भावना। भावना शब्द से उस ओर की एकाग्रता। उस भावना में तो क्षयोपशम, उपशम, क्षायिकभाव होता है। भावना, वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव है। क्षायिकभाव की, क्षयोपशमभाव की... आहाहा! उसकी भावना में पंचमभाव की भावना है। उस क्षायिकभाव की भावना नहीं। समझ में आया? आहाहा! **भावना से पंचम गति में मुमुक्षु...** क्या कहा? **परम पंचम भाव (पारिणामिकभाव की) भावना से पंचम गति में मुमुक्षु (वर्तमान काल में) जाते हैं,...** आहाहा! महाविदेहक्षेत्र में। **(भविष्य काल में) जायेंगे...** किस प्रकार? परम पंचम भाव की एकाग्रतारूप भावना। क्षायिक और उपशम की भावना नहीं। (भाव) है अवश्य। पंचम भाव की भावना में क्षायिकभाव है, परन्तु उसकी भावना नहीं। भावना पंचम भाव की है। आहा..!

मुमुक्षु : भावना का अर्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना अर्थात् एकाग्रता। द्रव्य के ओर की एकाग्रता। परन्तु वह

પંચમભાવમાં છે. એકાગ્રતા છે એ ઉત્કૃષ્ટ ક્ષાયિકભાવ છે. એકાગ્રતા ક્ષયોપશમભાવ પણ છે. પણ એ એકાગ્રતા દ્રવ્યમાં છે. એ પર્યાયમાં એકાગ્રતા નથી. વિશેષ આવશે...

(શ્રોતા :– પ્રમાણ વચન ગુરુદેવ!)